International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1078-1079

यक्ष प्रतिमाओं में भारतीय संस्कृति

चन्द्रोदय सिंह
प्राचीन इतिहास एवं पुरात्व विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

समन्वयशीलता भारतीय संस्कृति का एक विशिष्ट गुण है। समन्वयवादिता का यह दृष्टिकोण न केवल भारतीय–धर्म अपितु कला के क्षेत्र में अग्रगण्य है, जहां शैव, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन धर्मों की धाराऐं एक साथ मिलकर एकरस हो जाती है। यही कारण है कि यक्ष अन्यान्य देवी देवताओं के साथ रूपायित किये गये। प्राचीन भारतीय लोक धर्म अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण इनकी स्वतन्त्र रूप से पूजा होती थी, शनैः–शनैः अन्य देवताओं का महत्व बढ़ने से यक्षों की स्वतंत्र उपासना में धीरे–धीरे कमी आने लगी। इनकी स्वतन्त्र रूप से मूर्तियां कम बनने लगी? परन्तु जन–मानस से ये कभी भी लुप्त न हो सके। यही कारण है कि यक्षों की अन्य देवों के साथ उनके संरक्षक, सहायक तथा उपासक के रूप में मूर्तियां बनने लगी।

प्राचीनकाल से ही यक्षों का स्वरूप रहस्यमय रहा है। कहीं उसे अद्भुत, सुंदर स्वरूप वाला एवं महान कहा गया है तो कहीं उसे कुरुप, भद्दी आकृति वाला, बड़े उदर वाला, विभिन्न आकृति वाला माना गया है।

ऋग्वेद के अन्य मंत्र से भी यक्ष के अद्भुत स्वरूप का भान होता है, जिसके अनुसार–''हे अद्भुत शरीर वाले मित्र और वरुण! हम अपने शरीरों में यक्ष का आविर्भाव देखें।''

''मा कस्याम्दत क्रतू यक्षं भुजमा तनूभिः माशेषसामातनसा''[1]
–ऋग्वेद–5.70.4

इन मंत्रों में यक्ष को अद्भुत स्वरूप वाला स्वीकार किया गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने दूसरे मंत्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बताया कि इसमें मित्र और वरूण को अद्भुत क्रतु कहा गया है जो विशेषता यक्ष में होती थी उसी का मित्र और वरुण के अध्यारोप करके यह भावना की गयी है कि जब तममें भी वही अद्भुत शक्ति है तो यक्ष से हमें क्या प्रयोजन। वह हमारे समीप क्यों आने लगा? अतः इस मंत्र को देखते हुए यह निर्णय लिया जा सकता है कि यक्ष का स्वरूप अद्भुत था और उसके अद्भुत स्वरूप को स्वीकार करते हुए वैदिक वेद मित्र और वरुण को उससे विशिष्ट माना गया है। इन मंत्रों में यक्ष देवता का उल्लेख करते हुए उससे बचने या अलग रहने या आर्यदेवों से निम्न (निकृष्ट) स्तर पर होने का भाव पाया जाता है किन्तु वहीं दूसरी तरफ ऋग्वेद में ही यक्ष के सुन्दर रूप का भी उल्लेख है। सुन्दरता के लिए यक्षों से उपमा की जाती थी। सम्भवतः यह उस वर्ग के लोगों का संकेत है जो अन्य आर्य देवताओं में न विश्वास करके यक्षों में विश्वास करते थे। ऋग्वेद में ही यक्ष के सुन्दर रूप का उल्लेख है जिसमें यक्षों को रूप और सौन्दर्य से युक्त माना गया है। जो मरूत देव अश्वों के वेग से गमन करते हैं। वे यक्ष–दृशः अर्थात् यक्ष सदृश सुन्दर युवकों के समान सुशोभित हैं।[2]

''अत्यासों न य मरूतः स्वञ्चो यक्ष दृशो न शुभयत भर्याः।''

यक्ष के सामने सुन्दर लगने वाले (यक्ष–दृश) की कल्पना का उल्लेख परवर्ती साहित्य में भी बार–बार मिलता है। गृहसूत्रों में वर्णन आता है कि वैदिक चरण में प्रवेश करता हुआ ब्रह्मचारी इस प्रकार की कल्पना करे कि मैं भी यक्ष के समान प्रिय बनूँ।[3]

'यक्षमिव चक्षुषा प्रियो वा भूयासम्।

यक्ष सौन्दर्य तो यहाँ तक प्रसिद्ध था किसी अपरिचित किन्तु सुन्दर स्त्री से मिलकर उसका परिचय जानने के लिए कहा जाता था– ''क्या तुम कोई यक्षी हो।''[4]

'न देवेषु न यक्षेषु ताद्रदग्रपवती कचित् मानुषेष्वपि चान्देयषु दृष्टपूर्वा न च श्रुता।'

इसी आशय का अन्य उदाहरण महाभारत के आरण्यक पर्व में प्राप्त है, जहाँ पर वर्णित है कि स्वयंवर में नल को देखकर स्त्रियाँ सोचने लगीं– इसका रूप और कान्ति कितनी सुन्दर है, क्या यह कोई देव है, यक्ष है या गंधर्व है।[5]

'अहोरूप महोकन्तिरहो धैर्य महात्मनः कोऽपं देवो न यक्षो नुं गन्धर्वो नु भविष्यति।''।

ऋग्वेद में प्राप्त 'अद्भुत' और 'चित्र' न शब्दों की ध्वनि का अभिप्राय यक्ष के लिए ही है। यजुर्वेद में मन को अपूर्वः यक्ष कहा गया है। अद्भुत, अपूर्व चित्र इनका अर्थ एक ही है, जिसका प्रयोग यक्ष के रहस्यमय स्वरूप के लिए परवर्ती साहित्य में भी हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि वैदिक वाड्मय का सूक्ष्म अवलोकन यक्ष स्वरूप के विभिन्न तत्वों को उद्घाटित करता है। कहीं वह परोपकारी और कहीं अपकारी, कहीं वह रहस्यमय और भयावह स्वरूप वाला निरूपित है तो कहीं सौन्दर्य के प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित है। यक्ष के रहस्यमय स्वरूप का ज्ञान, महाकाव्य और पुराणों में भी प्राप्त होता है।[6]

महद्र का अर्थ महाकाव्य था जो यक्ष–मूर्तियों के विशाल आकार–प्रकार से स्वतः सिद्ध है। यक्ष की पूजा को महादुट्ठान कहा गया है। प्राचीन शिल्पियों का प्रायः यह मानना था कि यक्ष–मूर्तियां यथासम्भव विशाल बनायी जायें।

महद्रभूत एवं आश्चर्यमय–यह यक्ष की सर्वसम्मत कल्पना थी।[7] अथर्ववेद में वर्णन आता है कि भवन के बीच महत् यक्ष व्याप्त है। उसे सभी राष्ट्रधर बलि देते हैं।[8]

'महद्र यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलि राष्ट्रभूतो भरन्ति।'

अथर्ववेद में जिस महद्र ब्रह्म का वर्णन आता है वह महद्र यक्ष के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। अन्याय ग्रन्थ भी यक्ष के इस विलक्षण स्वरूप को स्वीकार करते हैं। महाकाय या बड़ा शरीर यक्ष की विशेषता थी। इसका अन्य उदाहरण है महाभारत क यक्ष युधिष्ठिर संवाद में जहां यक्ष को महाकाव्य, ताड़ वृक्ष के समान ऊँचा (ताल समुच्छित), पर्वतोपम, महाबली, अघृष्य तथा अग्नि और सूर्य के समान चमकता हुआ कहा गया है (ज्वलनार्क–प्रतीकाश)[9]

'विरूपाक्षं महाकाव्यं यक्ष ताल समुच्छयम्
ज्वलनार्क प्रतीकाशमघृष्यं पर्वतोपमम्।
सेतुमाश्रिव्यतिष्ठन्तं ददर्शभरतर्षभ
मेघगंभीरया वाचा तर्जयन्त महाबल।

यक्ष तीव्र गमन करने वाले तथा स्वेच्छानुसार स्थान परिवर्तित करने वाले होते हैं, तभी उन्हें भूतों की श्रेणी में रखा गया। पालि साहित्य के अनुसार यक्ष अपना स्वरूप परिवर्तन कर सकते है तथा चमत्कार भी दिखा सकते हैं।[10]

आगे चलकर यक्ष–स्वरूप की इन विशेषताओं को हम मौर्य, शुंग और कुषाण कालीन बड़ी–बड़ी मूर्तियों में चरितार्थ देखते है। अवध्य, अपराजित और अघृष्य होना यक्ष की ऐसी विशेषताएं थी जिनके आधार पर लोक में यह धारणा घर कर गयी थी कि यक्ष के पास अमृत है जिसे वह अपने उपासकों को प्रदान करता है। यक्ष मूर्तियों के बायें हाथ में प्रदर्शित घट या चषक का कारण भी यही है।

यक्ष–प्रतिमाएं विशाल कद स्वस्थ और बड़े उदर वाली बनायी गयीं। महाभारत में भी उन्हें महाकाव्य कहा गया है।[11] मथुरा, पटना, बेसनगर से कई सुन्दर और विशाल यक्ष–यक्षी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कुछ जातकों में अश्वमुखी यक्षी का भी उल्लेख आया है। साँची, भाजा, बोधगया में ऐसी यक्षियों को देखा जा सकता है। यक्षियों पर प्रायः सुन्दर एवं नग्न वृक्ष देवियों के रूप में भी प्रदर्शित किया गया है। सांची में भी वृक्ष के साथ झुकी हुई ऐसी यक्षियों को देखा जा सकता है।[12] कहा जाता है कि यदा–कदा यक्षियां अप्सराओं का वेश धारण कर मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।[13]

पुराणों में भी यक्ष स्वरूप के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। ब्राह्माण्ड पुराण में यक्ष को विलोहित, एककर्ण, मुंजकेश हस्वास्य, दीर्घ, जिहव, बहुद्रष्ट्र, महाहनु, रक्तपिंगा, चतुष्पाद दो गतियों का सारे शरीर पर बालों वाला, चतुर्भज सुन्दर नाक एवं बड़े मुंह वाला कहा गया है।[14] विष्णुपराुण में इन्हें कुरुप, दाढ़ी और स्वतंत्र मूर्तियों के रूप में यक्ष–यक्षिणियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[15]

गुप्तकाल के पहले जैन मूर्ति कला में हम कोई भी सेवक यक्ष और यक्षी तीर्थंकर के साथ नहीं पाते। गुप्तकाल की तीर्थंकर मूर्तियां बहुत कम हैं महावीर की एक बिना सिर की मूर्ति, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय में है, गुप्तकाल की मूर्ति के रूप में पहचानी गयी है। इस मूर्ति की पीठिका पर कहीं भी शासन देवता नहीं बने दिखते।

तीर्थंकर नेमिनाथ की एक बैठी मूर्ति जिस पर खण्डित अभिलेख गुप्त–काल का है, वैभार पहाड़ी राजगिरि से प्राप्त हुई है।[16]

यू0पी0 शाह के अनुसार अकोटा से प्राप्त ऋषभनाथ की कासें की खड़ी मुद्रा में प्राप्त मूर्ति सम्भवतः सबसे प्रारम्भिग जैन मूर्ति है जो कि तीर्थंकर के साथ शासन देवताओं को भी दिखाती है।[17] इस कांसे की मूर्ति के दोनों ओरे कुबेर की भांति यक्ष और दो भुजाओं वाली अम्बिका है जो तीर्थंकर जैसे–ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ महावीर के साथ पाया गया है। यद्यपि बाद में साहित्य और कला में कुबेर के समान आकृति वाले यक्ष और अम्बिका केवल नेमिनाथ के साथ शासन देवताओं के रूप में दिखाये गये हैं।

उपसंहार

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लगभग छठी शताब्दी ई0 में जिनों के यक्ष–यक्षी युगलों को सम्बद्ध करने की धारणा विकसित हुई। ये यक्ष–यक्षी जिनों के सेवक के रूप में संघ की रक्षा करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद 5.70.4
2. ऋग्वेद 7.56.16
3. गोभिल गृह्यसूत्र 3.4.28
4. महाभारत, आरण्यक पर्व, 50.3, 6.114
5. वही, 3.52, 16
6. ऋग्वेद, 1.190, 4
7. महाभारत, आरण्यक पर्व, 21, 12
8. अथर्ववेद, 10.8, 15
9. महाभारत, आरण्यक पर्व, 297,20.21
10. जातक, 1, 02, 233
11. महाभारत, आरण्यक पर्व, 290, 20, 21
12. कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ0 36,64
13. कुमारस्वामी, यक्षास, पृ0 21–22
14. ब्रह्माण्ड पुराण, 3.7, 42
15. शाह, यू0पी0ः इण्ट्रोडक्शन ऑफ शासन देवताज इन जैन वरिशप, प्रो0 इं0 ओ0का0 अक्टूबर 1959, वा0–11, भाग–1, पृ0 141
16. चन्दा, आर0पी0, ए0एस0आई0 इनुअल रिपोर्ट, 1925–26, पृ0 25, फलक–6 में सर्वप्रथम प्रकाशित।
17. शाह, यू0पी0ः इण्ट्रोडक्शन ऑफ शासन देवताज इन जैन वरिशप, प्रो0 इं0 ओ0का0 अक्टूबर 1959, वा0–11, भाग–1, पृ0 142